

## सम्पादकीय

### डंडे वाले पण्डितजी नहीं रहे

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डण्डावाले पण्डितजी के नाम से प्रसिद्ध विद्वान पण्डित कैलाशचन्दजी बुलन्दशहर मूलतः पण्डित नहीं; अपितु एक सदगृहस्थ व्यापारी रहे हैं। आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सत्समागम से वे एक सच्चे आत्मार्थी मुमुक्षु बन गये। अपनी युवावस्था में ही व्यापारादि कार्यों से पूर्णतः निवृत्त हो, आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय के लिए ही सम्पूर्णतः समर्पित हो गये थे। पूज्य गुरुदेवश्री के रहस्योद्घाटक प्रवचनों और आदरणीय आत्मार्थी विद्वान पण्डित खीमचन्दभाई की कक्षाओं ने उन्हें वीतरागी तत्त्वज्ञान का मर्मज्ञ बना दिया था।

खीमचन्दभाई के सभी बोल उन्हें जीवन भर याद रहे, जो उनकी डायरी में नोट थे, जिसके आधार पर उन्होंने उन बोलों को जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमालाओं के रूप में व्यवस्थित कर दिया। जिसे बाद में उनके सुपुत्र श्री पवन जैन ने एक विशाल ग्रन्थ के रूप में व्यवस्थित कर प्रकाशित किया। प्रकाशित होने के पूर्व बड़ी साइज में सहस्राधिक पृष्ठ के उस विशाल ग्रन्थ का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया, अध्ययन किया; न केवल अध्ययन अपितु उसमें आवश्यक संशोधन भी किये।

अपनी धुन के धनी पण्डित कैलाशचन्दजी अपने अन्तिम समय तक भी आत्मकल्याण में अत्यन्त उपयोगी बोलों को निरन्तर दुहराते रहते थे। उनके मुख से यही निकलता था कि पर से खस, स्व में बस, आयेगा आत्मा का अतीन्द्रिय रस, इतना कर तो बस।

वे स्वयं तो निरन्तर अध्ययनरत रहते ही थे, साथ में सम्पूर्ण भारतवर्ष में गाँव-गाँव में जाकर मुमुक्षु भाई-बहिनों को जैनदर्शन के मूल सिद्धांतों का अध्ययन कराते रहे। इसकारण लोग उन्हें पण्डितजी कहने लगे थे।

यद्यपि उन्हें लाठी रखने की खास आवश्यकता नहीं थी; तथापि वे हाथ में एक डण्डा रखते थे। यद्यपि उन्होंने उस डण्डे का उपयोग अपने किसी छात्र को मारने-पीटने में कभी नहीं किया, पर वे डण्डे को फटकारते अवश्य रहते, इस कारण डण्डेवाले पण्डितजी के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। वे जो कुछ पढाते थे, उसे पूरी तरह सभी को याद करा देते थे।

पिछले दिनों जब मैं उनसे मिला तो एक बात अवश्य कही कि इस पवन को समझाओ कि इन बाहर की प्रवृत्तियों से कुछ नहीं होगा। जो कुछ किया है, सो बहुत अच्छा; पर आत्मा का कल्याण इनसे होने वाला नहीं है। उसके लिये तो अन्तरोन्मुखी पुरुषार्थ करना होगा, समयसारादि ग्रन्थों का गहरा अध्ययन-मनन-चिन्तन करना होगा।

उनके उक्त विचारों को जानकर उनके अन्तर की भावना समझ में आयी कि वे स्वयं तो निरन्तर आत्मचिन्तन में रहते ही थे, आसपास के लोगों को भी प्रत्यक्ष-परोक्षरूप से तदर्थ प्रेरित करते रहते थे।

पवनजी के प्रति कहे शब्दों से न केवल पवनजी को; अपितु हमें-आपको भी यह प्रेरणा लेना चाहिये कि इन बाह्य प्रवृत्तियों में लगे रहने से आत्मकल्याण होने वाला नहीं है। आत्मकल्याण के लिये तो हमें आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ करना चाहिये। मैं कोशिश करूँगा कि उनके बताये मार्ग पर चलूँ।

मुझे तो उनका अगाध वात्सल्य सदा ही प्राप्त रहा है। उनके पुत्र पवन जैन और पौत्र स्वप्निल जैन से भी मेरा सदा रहने वाला असीम वात्सल्यभाव है। उनकी ओर से भी साधर्मी वात्सल्यभाव में कोई कमी नहीं है।

पण्डितजी के देहविलय के अवसर पर मैं उनके शीघ्र भवमुक्त होने की मंगल कामना करता हूँ।

## नियमसार : एक अनुशीलन

(गतांक से आगे...)

### नियमसार गाथा १४६

अब इस गाथा में साक्षात् स्ववश मुनिराज कैसे होते हैं ह यह बताते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है ह

परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं।

अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं॥१४६॥

( हरिगीत )

परभाव को परित्याग ध्यावे नित्य निर्मल आतमा।

वह आत्मवश है इसलिए ही उसे आवश्यक कहे॥१४६॥

परभावों का त्याग करके जो निर्ग्रन्थ मुनिराज अपने निर्मलस्वभाव वाले आत्मा को ध्याता है, वह वस्तुतः आत्मवश है। उसे आवश्यक कर्म होते हैं ह ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“यहाँ साक्षात् स्ववश परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है।

निरुपराग निरंजन स्वभाववाले होने के कारण जो श्रमण औदयिकादि परभाव को त्याग कर, इन्द्रिय, काया और वाणी के अगोचर सदा निरावरण होने से निर्मलस्वभाववाले और पापरूपी वीर शत्रुओं की सेना के ध्वजा को लूटनेवाले निजकारण परमात्मा को ध्याता है, उस श्रमण को आत्मवश श्रमण कहा गया है।

उस अभेद-अनुपचार रत्नत्रयात्मक श्रमण को समस्त बाह्य क्रिया-काण्ड आडम्बर में विविध विकल्पों के महाकोलाहल से प्रतिपक्ष महा आनन्दानन्दप्रद निश्चय धर्मध्यान और निश्चय शुक्लध्यान स्वरूप परमावश्यक कार्य होता है।”

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“जगत के अज्ञानी बाह्य स्वतंत्रता से ही अपने को स्वतंत्र मान लेते हैं; परन्तु वे सभी परतंत्र हैं। मुनिभगवन्तों के भी जितने अंशों में राग है, उतने अंशों में परतंत्रता है। अभेद-अनुपचार निर्विकल्पदशारूप/निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मुनिराज के परम-

आवश्यक होता है।<sup>१</sup>

यह स्वाधीनतारूप परम-आवश्यक कार्य समस्त बाह्य क्रियाकाण्ड आडम्बर के विविध विकल्पों के महाकोलाहल से विरुद्ध महा-आनन्दानन्ददाता निश्चयधर्मध्यान व निश्चयशुक्लध्यान रूप है।<sup>२</sup>”

गाथा और उसकी टीका में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि वे परमजिन योगीश्वर मुनिराज औदयिकादि परभावों को त्यागकर एकमात्र परमपारिणामिकभावरूप निज कारण परमात्मा को ध्याते हैं; वे ही वास्तव में आत्मवश श्रमण हैं, स्ववश हैं, निश्चय परम आवश्यक वाले महाश्रमण हैं।।१४६।।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज आठ छन्द लिखते हैं, जिनमें से पहला छन्द इसप्रकार है ह

( पृथ्वी )

जयत्ययमुदारधीः - स्ववशयोगिवृन्दारकः

प्रनष्टभवकारणः - प्रहतपूर्वकर्मावलिः ।

स्फुटोत्कटविवेकतः स्फुटितशुद्धबोधात्मिकां

सदाशिवमयां मुदा व्रजति सर्वथा निर्वृतिम् ॥२४७॥

( ताटक )

शुद्धबोधमय मुक्ति सुन्दरी को प्रमोद से प्राप्त करें।

भवकारण का नाश और सब कर्मावलि का हनन करें।

वर विवेक से सदा शिवमयी परवशता से मुक्त हुए।

वे उदारधी संत शिरोमणि स्ववश सदा जयवन्त रहें ॥२४७॥

भव के कारण को नष्ट किया है जिसने और पूर्व कर्मावली का हनन करनेवाला सन्त स्पष्ट, उत्कृष्ट विवेक द्वारा प्रगट शुद्धबोधस्वरूप, सदा शिवमय, सम्पूर्ण मुक्ति को प्रमोद से प्राप्त करता है; ऐसा वह स्ववश मुनिश्रेष्ठ जयवंत है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“जो पुण्य-पाप के भाव करता है, वह उदार नहीं है; परन्तु जिसमें कभी समाप्त नहीं होनेवाली - ऐसी परमानन्दमय शान्ति का प्रवाह निरन्तर चालू रहता है - ऐसे अक्षय-निधान ध्रुव सामान्य शक्ति से परिपूर्ण स्वभाव का स्वीकार करनेवाला ही उदार है। - यही सच्ची उदारता है।

जिसने भव के कारण को नष्ट करने के लिए स्वाश्रित निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्ष

का कारण प्रगट किया है और पूर्व में हुए विकारों को नष्ट कर दिया है; तथा जिसने स्पष्ट, प्रत्यक्ष, उत्कट, विवेक द्वारा शक्तिरूप पूर्णस्वभाव को प्रगट किया है और जो व्यक्त, शुद्ध, ज्ञानानन्दस्वरूप सदा कल्याणमय है - ऐसी सम्पूर्ण मुक्ति/स्वाधीनता को जो प्रमोद से प्राप्त करते हैं, वे मुनि ही स्ववश हैं, कृतकृत्य हैं, जयवंत हैं।<sup>१</sup>”

जो बात गाथा और टीका में कही है; उसी बात को इस कलश में दुहराते हुए कहते हैं कि पूर्व कर्मावली को नष्ट करनेवाले और संसार के कारण को भी जड़मूल से उखाड़नेवाले, उदारबुद्धि मुनिराज ही मुक्ति को प्राप्त करते हैं। वे श्रेष्ठतम मुनिराज ही निश्चय परम आवश्यक कर्म के धारक हैं।।२४७।।

दूसरा छन्द इसप्रकार है ह

( अनुष्टुभ् )

प्रध्वस्तपंचबाणस्य पंचाचारांचिताकृतेः ।

अवंचकगुरोर्वाक्यं कारणं मुक्तिसंपदः ॥२४८॥

( दोहा )

काम विनाशक अवंचक पंचाचारी योग्य ।

मुक्तिमार्ग के हेतु हैं गुरु के वचन मनोज्ञ ॥२४८॥

पंच बाणों के धारक कामदेव के नाशक ज्ञान; दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप पाँच आचारों से सुशोभित आकृतिवाले अवंचक गुरु के वाक्य ही मुक्ति संपदा के कारण हैं।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“जिन्होंने कामदेव का नाश किया है और ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यात्मक पंचाचार से सुशोभित जिनकी आकृति है अर्थात् जो साक्षात् सुन्दर मोक्षमार्ग की मूर्ति हैं; तात्पर्य यह है कि बाह्य-अभ्यन्तर शीतलता प्रदान करनेवाली, शान्त, वीतरागी, परम-महिमावंत जिनकी पवित्रदशा है। - ऐसे निष्कपट श्री गुरुओं के वाक्य मुक्तिसम्पदा के कारण हैं।<sup>२</sup>”

इसप्रकार इस कलश में यही कहा गया है कि सर्वज्ञ भगवान की वाणी के अनुसार कहे गये अवंचक गुरुओं के वचन ही मुक्तिमार्ग में सहयोगी होते हैं ॥२४८॥

तीसरा छन्द इसप्रकार है ह

( अनुष्टुभ् )

इत्थं बुद्ध्वा जिनेन्द्रस्य मार्गं निर्वाणकारणम् ।

निर्वाणसंपदं याति यस्तं वंदे पुनः पुनः ॥२४९॥

( दोहा )

जिनप्रतिपादित मुक्तिमग्न इसप्रकार से जान ।

मुक्ति संपदा जो लहे उसको सतत् प्रणाम ॥२४९॥

मुक्ति का कारण जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित मार्ग है; उसे इसप्रकार जानकर जो निर्वाण प्राप्त करता है; मैं उसे बारम्बार वंदन करता हूँ ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं  
“मूल में अर्थात् गाथा १४६ में यह तो कहा है कि परभाव को छोड़ता है, परन्तु एक समय की पर्याय के बारे में कुछ नहीं कहा; क्योंकि वह तो दूसरे समय स्वयं ही छूट जायेगी । वास्तविक बात तो यह है कि निर्मल ज्ञातास्वभाव में यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान होने पर विभाव की उत्पत्ति ही नहीं हुई; इसे ही व्यवहार से “विभाव का त्याग किया” – ऐसा कहा जाता है और इस कथन से नास्तिपक्ष का ज्ञान कराया गया है ।

अस्ति-अपेक्षा तो वास्तव में चिदानंद शुद्धस्वभाव में अरागी निश्चयरत्नत्रयरूप जो निर्मलदशा प्रगट हुई है, वही जिनेन्द्र भगवान द्वारा बताया हुआ मोक्ष का मार्ग है ।  
– ऐसे ‘उस मार्ग की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।’ – इसप्रकार मुनिराज को भी ग्रन्थ की रचना करते हुए ऐसा विकल्प तो आता है; परन्तु उनके चित्त में उस विकल्प का आदर नहीं होता, उनके चित्त में आदर तो एकमात्र वीतरागता का ही होता है।”

इस छन्द में जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित मुक्तिमार्ग को जानकर, अपनाकर, अपने जीवन में उतार कर मुक्ति प्राप्त करनेवाले सन्तों की अतिभक्तिपूर्वक वन्दना की गई है ॥२४९॥

चौथा छन्द इसप्रकार है ह

( द्रुतविलंबित )

स्ववशयोगिनिकायविशेषक प्रहतचारुवधूकनकस्पृह ।

त्वमसि नशरणं भवकानने स्मरकिरातशरक्षतचेतसाम् ॥२५०॥

( रोला )

कनक कामिनी की वांछा का नाश किया हो ।

सर्वश्रेष्ठ है सभी योगियों में जो योगी ॥

काम भील के काम तीर से घायल हम सब ।

हे योगी तुम भववन में हो शरण हमारी ॥२५०॥

कंचन-कामिनी की कामना को नाश करनेवाले योगी ही योगियों के समूह में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं । हे सर्वश्रेष्ठ योगी कामदेवरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले हम लोगों के लिए आप भवरूप भयंकर वन में एकमात्र शरण हैं ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“टीकाकार मुनिराज कहते हैं कि जिन मुनिराज को अपने आत्मा में निर्मल गुणमणि की सुन्दरता की गाढ़ रुचि हुई है, उन्हें सुन्दर स्त्री की और सुवर्ण की इच्छा नहीं होती ।

मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि चिदानन्द ज्ञातास्वभाव में लीन – ऐसे योगीसमूह में श्रेष्ठ हे स्ववश योगी ! हे शुद्धात्मा !! तुम ही एकमात्र हमारे लिए शरण हो ।

मानसिक विकार-कामेच्छारूप अव्यक्त सूक्ष्म विकल्प भी कभी हो तो वह शरणरूप नहीं है; परन्तु ‘सिद्धसमान सदा पद मेरो’ अर्थात् मेरा आत्मा ही मुझे श्रेष्ठ शरण है अर्थात् हमारे जैसे मुनि के वर्तमान चारित्रदशा में कमजोरी के कारण यदि कोई राग आ जाये तो वह शरणभूत नहीं है; परन्तु भवरूपी जंगल में हे मुनिश्वर तुम ही शरण हो ।

यहाँ व्यवहार से मुनिराज को व निश्चय से आत्मा को शरण बताया गया है।”

इस छन्द में भी कंचन-कामिनी की वांछा से रहित मुनिराजों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है और कहा गया है कि वे कामविजयी मुनिराज कामवासना से त्रस्त हम लोगों के लिए एकमात्र शरण हैं ॥२५०॥

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है ह

( द्रुतविलंबित )

अनशनादितपश्चरणैः फलं तनुविशेषणमेव न चापरम् ।

तव पदांबुरुहद्वयचिंतया स्ववश जन्म सदा सफलं मम ॥२५१॥

( रोला )

अनशनादि तप का फल केवल तन का शोषण ।

अन्य न कोई कार्य सिद्ध होता है उससे ॥

हे स्ववश योगी ! तेरे चरणों के नित चिन्तन से ।

शान्ति पा रहा सफल हो रहा मेरा जीवन ॥२५१॥

अनशानादि तपश्चरणों का फल मात्र शरीर का शोषण है, दूसरा कुछ भी नहीं । हे स्ववश योगी ! तेरे युगल चरण कमल के चिन्तन से मेरा जन्म सदा सफल है ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“धर्म के नाम पर व्रत-तप करे तो भी उसका फल तो मात्र शरीर का शोषण करना ही कहा है । निमित्त-व्यवहार में रुचिवान होने से जिसकी दृष्टि विपरीत है, वह जीव कदाचित् व्रत-तप करे तो भी राग और शरीर की क्रिया में धर्म मानकर वह मिथ्या-अभिप्राय को ही पुष्ट करता है; इसलिए अज्ञानी है और इसीलिए अज्ञानी के व्रतादि को बालव्रत एवं बालतप कहा गया है ।

वास्तव में जब अपने परमानन्द स्वरूप में यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान द्वारा स्वसन्मुख एकाग्रता होने पर शुभाशुभ इच्छा नहीं होती और वीतरागी शान्त आनन्द की उग्रता होती है, तब तप होता है और उससे ही स्ववशतारूपी धर्म होता है ।

मुनिराज कहते हैं कि व्रत-तपादि के विकल्प होने पर भी वे शरण-भूत नहीं हैं; परन्तु निज-अखण्डानन्द शुद्ध त्रिकाल कारणपरमात्मा के चरणकमल युगल के चिन्तन से - एकाग्रता से मेरा जन्म सदा सफल है । ज्ञानानन्द की दृष्टि और स्थिरता ही श्रेष्ठ है । क्रियाकाण्ड, व्रत, उपवास के राग में रुकना श्रेष्ठ नहीं है । सहजानन्द चिदात्मा ही एकमात्र शरण है ।<sup>१</sup>”

इस छन्द में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें अनशानादि तपों का फल मात्र शरीर का शोषण बताया गया है । साथ में यह भी कहा गया है कि स्ववश योगी ही महान है; उनके चरणों की उपासना में ही मानव जीवन सफल है ॥२५१॥

छठवाँ छन्द इसप्रकार है ह

( मालिनी )

जयति सहजतेजोराशिनिर्मग्नलोकः

स्वरसविसरपूरक्षालितांहः समंतात् ।

सहजसमरसेनापूर्णपुण्यः पुराणः

स्ववशमनसि नित्यं संस्थितः शुद्धसिद्धः ॥२५२॥

( रोला )

समता रस से पूर्ण भरा होने से पावन ।

निजरस के विस्तार पूर से सब अध धोये ॥

स्ववश हृदय में संस्थित जो पुराण पावन है ।

शुद्धसिद्ध वह तेजराशि जयवंत जीव है ॥२५२॥

जिसने निजरस के विस्ताररूपी बाढ (पूर) के द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है; जो सहज समतारस से भरा होने से परम पवित्र है; जो पुरातन है; जो स्ववश मन में संस्थित है अर्थात् हृदय के भावों को स्ववश करके विराजमान है; तथा जो सिद्धों के समान शुद्ध है हू ऐसा सहज तेजराशि में निमग्न जीव सदा जयवंत है ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं ह

“जिसने निजरस के विस्ताररूपी पूर द्वारा स्वसामर्थ्य के बल से पुण्य-पाप को सर्व ओर से धो डाला है । निर्मलस्वभाव में उग्र लीनतारूप स्नान द्वारा विभावभाव को धो डाला है । जिसकी दृष्टि में वीतरागता है तथा जो चारित्र में विशेष शुद्धता प्रगट करके मिथ्यात्व आदि पाप से मुक्त हुए हैं । आत्मा सहज समता रस से पूर्ण भरा हुआ होने से पवित्र है, जो सनातन है तथा पुण्य-पाप रूप व्यवहार राग पवित्र नहीं है, सनातन नहीं है, अनित्य है, मलिन है ।<sup>१</sup>”

जो स्ववश मुनि ज्ञानानन्द में सुस्थित हैं, निर्विकल्पभाव में विराजमान हैं और शुद्ध सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध, विशुद्ध, सुसिद्ध समान हैं और सहज चिदानन्द तेजपुंज में मग्न हैं, वे जयवंत हैं ।<sup>२</sup>”

इसप्रकार इस छन्द में उन जीवों या सन्तों की महिमा बताई गई है; जो समतारस से भरे हुए होने से पवित्र हैं, जिन्होंने निजरस की लीनता द्वारा मिथ्यात्वादि पापों को धो डाला है, जो पुरातन है, जो अपने में समाये हुए हैं और सिद्धों के समान शुद्धस्वभावी हैं ॥२५२॥

(क्रमशः)